IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारत में ग्रामीण विकास की अवधारणा : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. रश्मि
एम. ए. (समाजशास्त्र), पी.–एच.डी.
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
आवास– I–69, इन्दिरापुरी कॉलनी,
राजा बाजार, पटना–13 (बिहार)

शोध–सार (Abstract)

प्रस्तुत शोध–पत्र 'भारत में ग्रामीण विकास की अवधारणा : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' पर आधारित है। भारत गाँवों का देश है। 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ 640867 गाँव है। इन गाँवों में देश की 68.8 प्रतिशत आबादी रहती है। यह आबादी भारत की रीढ़ कही जा सकती है, जो निम्न आय वर्ग से सम्बन्ध रखती है। किन्तु देश के विकास और भारत के पोषण को आधार प्रदान करती है। स्वयं अभाव में जीवनयापन करने वाला ग्रामीण समाज उस शहरी सभ्यता के विकास की ऊँची बुलन्दियों को छूने में मदद कर रहा है जिसे इण्डिया के नाम से जाना जाता है। महानगरों और छोटे शहरों के चमक–दमक के पीछे पृष्ठभूमि में एक ऐसा समाज भी है, जो आज भी विकास की बाट जोह रहा है। अतः भारत के विकास के लिए आवश्यक है ग्रामीण विकास। बगैर ग्रामीण विकास के अब्दुल कलाम का 2020 तक भारत के विकसित देश बनने का सपना सिर्फ सपना ही रह सकता है। समग्र और वास्तविक विकास की प्राप्ति के लिए ग्रामीण क्षेत्रों को विकास की मुख्यधारा में शामिल करना होगा क्योंकि ग्रामीण विकास ही समग्र विकास की कुँजी है।

शब्द कुंजी : ग्रामीण विकास, अवधारणा, निर्धनता, आर्थिक विकास, स्थानीय स्वशासन।

परिचय :

प्रस्तुत शोध–पत्र ''भारत में ग्रामीण विकास की अवधारणा : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'' पर आधारित है। ग्रामीण विकास से ही राष्ट्र का विकास संभव है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का कथन है कि ''भारत की आत्मा गाँवों में बसती है।'' जब गाँव है तब देश है। इस मूल मंत्र को दृष्टिगत रखते हुए यह अवश्यम्भावी हो जाता है कि देश के गाँवों को विकास के पथ पर अग्रसर किया जाए, गाँवों को विकास की मुख्य धारा में समाहित किया जाए। विकास का मूलभूत उद्देश्य एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था को सुनिश्चित करना है जहाँ पर सभी व्यक्ति समान हो, सभी के लिए समान रूप से 'अवसरों की समानता' विद्यमान हो तथा विभिन्न क्षेत्रों, समाज एवं वर्ग आदि में असमानता की लकीरें न हो।

भारत में ग्रामीण विकास की चेतना का सूत्रपात राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के द्वारा किया गया। उन्होंने 6 मई, 1939 को वृंदावन में ग्राम सेवकों द्वारा आयोजित एक सभा को संबोधित करते हुए कहा था, ''यह देखकर मुझे बहुत दुःख होता है कि आप लोगों में से अधिकांश या तो शहर से आये हैं या शहरी जीवन के अभ्यस्त हो गए हैं। जब तक अपना मन शहर से हटाकर गाँवों में नहीं लगायेंगे, तब तक गाँव के लोगों की सेवा आप नहीं कर सकते। आपको यह भी समझ लेना चाहिए कि हिन्दुस्तान गाँवों के ताने–बाने से बना है, शहरों से नहीं और जब तक आप ग्राम्य जीवन को और गाँवों के कुटिर उद्योगों को पुनर्जीवित नहीं कर सकते, तब तक आप उनका पुनर्निर्माण नहीं कर सकते। हमारे गाँवों में जीवन का प्रवाह अवरूद्ध हो गया है और ये मृतप्राय है। औद्योगिकीकरण उनके प्राणों का संचार नहीं कर सकता है। अपनी झोपड़ी में रहने वाले किसान को जीवन तभी मिलेगा जब उसे अपने घरेलू उद्योग फिर से वापस मिलेंगे तथा जब अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए वह गाँवों पर ही निर्भर रहेगा, शहरों पर नहीं, जैसा कि आज उसे विवश होकर करना पड़ रहा है। इस आधारभूत सिद्धांत को यदि आप आत्मसात नहीं करते तो ग्राम पुनर्निर्माण के उस कार्य में लगने वाला सारा समय व्यर्थ जाएगा।''[1]

परन्तु सच्चाई यह है कि गाँव विकास की दौड़ में पीछे रह गये, विकास की मुख्यधारा में समाहित होने से वंचित रह गये, जबकि देश की राष्ट्रीय आय में ग्रामीण समुदाय का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आजादी मिले 73 साल हो गये, किन्तु आज भी देश के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अनेक दृष्टिकोणों से व्यापक अन्तराल पाया जाता है। एक ओर देश में चमचमाते, अनेक सुविधाओं से लैस, भव्य इमारतों से सुसज्जित शहर है जो 'शाइनिंग इण्डिया' की अवधारणा को मूर्त रूप प्रदान कर रहे हैं तो दूसरी ओर मूलभूत सुविधाओं से वंचित विकास की रोशनी से दूर तथा विभिन्न अभावों से जूझ रहे गाँव, जहाँ देश की आत्मा निवास करती है।

ग्रामीण विकास की अवधारणा :

जहाँ तक ग्रामीण विकास की अवधारणा का सवाल है, इसको लेकर वैचारिक और सैद्धांतिक मतभेद है। चूंकि आर्थिक विकास की अवधारणा पर अर्थशास्त्रियों के भिन्न–भिन्न मत हैं, इसलिए ग्रामीण विकास को परिभाषित करना कठिन है। सामान्य तौर पर कहा जाता है कि ग्रामीण विकास का मतलब है सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, बिजली का विस्तार, खेती की तकनीकों में सुधार, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं के विस्तार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों का विकास। लेकिन यह परिभाषा इस मायने में संकुचित है कि यह ग्रामीण विकास के उद्देश्यों की संकुचित धारणा पर आधारित है।

सर्वप्रथम ग्रामीण विकास को कृषि विकास से अलग करके देखना चाहिए। ग्रामीण दरिद्रता की समस्या के समाधान के लिए यह रणनीति अपनाई गई कि किसानों को अधिक से अधिक ऋण दिये जाएँ, लेकिन यह रणनीति भारत, श्रीलंका, बंगला देश जैसे देशों में विफल हो गई। इस तरह की रणनीति कुछ क्षेत्रों में किसानों के छोटे मध्यम वर्ग को जन्म दे सकती है। अतएव पूरे ग्रामीण क्षेत्र में इस रणनीति से ग्रामीण निर्धनता का हल नहीं किया जा सकता है। गरीब व्यक्तियों की आय को बढ़ाने के लिए भी कई प्रकार के कार्यक्रम चलाये जाते हैं। इनमें भी कल्याण एवं अन्य सेवाओं की सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती। अतएव ''ग्रामीण विकास में वैसे कार्यक्रमों को अवश्य शामिल किया जाना चाहिए जिनका लक्ष्य हो व्यक्ति के जीवन अवसरों को उन्नत करना एवं सामूहिक कल्याण''। इस धारणा को लेकर यदि चला जाए तो ग्रामीण विकास का स्वरूप न केवल अलग–अलग देशों में अलग–अलग होगा, बल्कि एक ही देश के भीतर एक क्षेत्र और दूसरे क्षेत्र में भी अन्तर होगा।

ग्रामीण विकास को किस सीमा तक बाह्य प्रेरकों पर निर्भर रहना चाहिए? यह सवाल भी उठता है। बाह्य प्रेरकों पर अधिक निर्भरता से स्थानीय आबादी आत्मनिर्भर से विमुख हो जाएगी। यह उनकी परनिर्भरता को मजबूत करेगा। अतएव ''ग्रामीण विकास की अवधारणा के भीतर ऐसी रणनीति को अवश्य शामिल करना चाहिए जिसका जोर ग्रामीण उत्पादन व्यवस्था के भीतर नयी शक्ति के आवंटन पर हो ताकि रोजगार का अवसर बढ़ सके और पेशे के बहुत सारे अवसर लोगों को प्राप्त हो सके।''[2]

बी. के. आर. राव के मतानुसार, ''आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो आवश्यक रूप से व्यक्तियों के विकास का एक ऐसा साधन है जो उन्हें अपनी पूरी अन्तः शक्ति को प्राप्त करने में समर्थ बनाता है।'' दूसरे शब्दों में, यह मानव मूल्यों एवं मानवीय प्रतिष्ठा की उपलब्धि से भी सम्बन्धित है। अतएव ग्रामीण विकास पर उनका विचार उनके वृहत्तर मानवीय परिप्रेक्ष्य से प्रभावित था। उन्हीं के शब्दों में, ''गैर–कृषि विकास एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक सेवाओं का विकास ग्रामीण निर्धनता एवं बेरोजगारी की जटिल समस्याओं के समाधान के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना की कृषि विकास।[3]

इस तरह राव के मतानुसार विकास का मतलब सामाजिक परिवर्त्तन के साथ–साथ आर्थिक बेहतरी से है। ग्रामीण विकास की रणनीतियों की चर्चा यद्यपि राव ने विस्तारपूर्वक की है, लेकिन ग्रामीण विकास लाने के लिए उन्होंने न तो सामाजिक परिवर्त्तन की प्रकृति पर प्रकाश डाला है और न ही उन्होंने कोई ऐसे तंत्र की चर्चा की है जिसका प्रयोग करके इसे सुनिश्चित किया जा सके।

योगेन्द्र एन. दास के अनुसार ''ग्रामीण विकास की अवधारणा को लेकर विभिन्न मत है; लेकिन मेरा निष्कर्ष है कि मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं के साथ ही साथ ग्रामीण आबादी की मूलभूत आवश्यकताओं से यह प्रथमतः जुड़ी है ताकि उन्हें उत्पादी एवं प्रबुद्ध बनाया जा सके।

चूँकि ग्रामीण विकास का लक्ष्य निर्धनता को कम करना है इसे इस तरफ अवश्य अभिकल्पित किया जाए कि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि हो सके। ऐसा विश्वास किया जाता है कि स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सांस्कृतिक क्रियाओं जैसी मूलभूत सेवाओं के साथ–साथ खाद्य आपूर्तियों एवं पौष्टिकता में वृद्धि से ग्रामीण निर्धनों की भौतिक खुशहाली एवं उनके जीवन की गुणवत्ता में प्रत्यक्षतः सुधार आएगा, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से उनकी उत्पादकता भी बढ़ेगी और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान की उनकी क्षमता भी बढ़ेगी।

बी. सिंह के अनुसार, ''यह एक बहुमुखी धारणा है। इसके अन्तर्गत केवल मौद्रिक आय में ही वृद्धि शामिल नहीं है, परन्तु वास्तविक आदतें, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, अधिक आराम के साथ–साथ उन समस्त सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में सुधार भी शामिल है जो एक पूर्ण और सुखी जीवन का निर्माण करती है।''[4]

देवेन्द्र कुमार दास के शब्दों में, ''ग्रामीण विकास मौलिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्त्तन की एक क्रिया है। इसमें ग्रामीण जनता की जीवन–दशा को प्रत्यक्ष रूप से उन्नत बनाने हेतु सभी इच्छित क्रियाएँ शामिल हैं। ऐसी क्रियाओं में क्षेत्र आधारित, उपक्षेत्रीय या विशिष्ट प्रकृति की क्रियाएँ शामिल हैं।'' ग्रामीण विकास एक समग्र क्रिया होने के साथ–साथ समस्त विकास प्रक्रिया का उत्प्रेरक भी है।

महात्मा गाँधी का ग्रामीण विकास से तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन एवं असहाय लोगों के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक स्तर को ऊपर उठाकर ग्राम को एक स्वावलम्बी गणतंत्र बनाना है अर्थात् ग्रामों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के साथ–साथ उसकी रूढ़िवादिता, पक्षपात तथा संकीर्ण विचारधारा को समाप्त करके उन्हें स्वावलम्बी बनाना है।

इस प्रकार अलग–अलग सिद्धान्तों में कहीं आर्थिक और कहीं सामाजिक कारकों पर बल दिया गया है। वास्तव में विकास का तात्पर्य जीवन की भौतिक गुणवत्ता में सकारात्मक परिवर्त्तन से है जो अपने में आर्थिक और सामाजिक दोनों पक्षों को समाहित करता है। केवल आर्थिक विकास ही विकास का अभिप्राय नहीं है, बल्कि इसके लाभों का न्यायोचित बँटवारा है। दूसरे शब्दों में, विकास का अभिप्राय न्याय के साथ विकास है। इस प्रकार ग्रामीण विकास की अवधारणा ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार के सभी पक्षों को समाहित करती है। लेकिन वास्तविक अर्थ में विकास के लाभों को निर्धनतम लोगों तक पहुँचाना ग्रामीण विकास की रणनीति का मुख्य तत्त्व है। अमर्त्य सेन के शब्दों में, ''भारतीय समाज के संदर्भ में आर्थिक विकास न्याय एवं विवरणात्मक न्याय के अभाव में कभी पूर्ण नहीं हो सकता।''[5]

भारत जैसे देश में ग्रामीण आर्थिक विकास के बगैर देश का आर्थिक विकास नहीं हो सकता। विश्व के विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के इतिहास से यह साबित हो चुका है कि प्रत्येक विकसित देश का आर्थिक विकास ग्रामीण आर्थिक विकास से ही प्रारम्भ हुआ है और ग्रामीण आर्थिक विकास के बल पर आज अनेक देश आर्थिक महाशक्ति बन चुके हैं किसी भी ग्राम का आर्थिक विकास एक ही दिन में नहीं हो सकता है। इसके लिए अनेक प्रकार के प्रयास विभिन्न स्तरों पर करने पड़ते हैं। ग्राम की आर्थिक गतिविधियों में हर प्रकार से वृद्धि करनी पड़ती है तथा जब इन आर्थिक गतिविधियों के संचालन में ग्रामीणों की जनसहभागिता होती है तो ग्राम आर्थिक रूप से शक्तिशाली होता है और ग्राम का प्रत्येक ग्रामीण आर्थिक रूप से सम्पन्न हो जाता है।

मुख्य रूप से विकास में अधिक जोर इस बात पर दिया जाता है कि सामाजिक व्यवस्था ऐसी बनायी जाए जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वाभिमान से रह सके। अगर प्रत्येक व्यक्ति और इस प्रकार समाज के सर्वांगीण विकास के लिए उपयुक्त सामाजिक–आर्थिक वातावरण तैयार किया जाए तो ऐसा हो सकता है। इसके लिए न केवल यह आवश्यक है कि सभी दलितों और पीड़ितों को अत्याचार से मुक्त किया जाए, बल्कि ऐसी संस्था स्थापित की जाए, जो न केवल लोकतांत्रिक हो, बल्कि जनता के समीप हो। पंचायत ऐसी संस्था है, जो न केवल जनता के समीप है, बल्कि जिसमें जनता को, महिलाओं और समाज के उपेक्षित वर्गों को सभी स्तरों पर गाँव, प्रखण्ड और जिला स्तर पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया गया है। मूलतः ग्रामीण विकास की अवधारणा स्थानीय–स्वशासन (Self Government) से है।

पंचायती राज (स्थानीय–स्वशासन) :

पंचायती राज लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण से हमारा अभिप्राय यह है कि सरकार के काम–काज में अधिक से अधिक तायदाद में जनता की भागीदारी हो। जब हम विकेन्द्रीकरण, जो शासन की एक प्रक्रिया का बोध कराता है, के साथ लोकतांत्रिक शब्द का प्रयोग करते हैं, तो हम विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य उजागर करना चाहते हैं, अर्थात् अधिक से अधिक लोग सरकार के सभी स्तरों राष्ट्रीय, राज्य और विशेष रूप से स्थानीय धरातल पर जुड़े। इस व्यवस्था से आशा की जाती है कि अपनी भलाई के लिए स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोग न केवल योजनाएँ बनाएँ बल्कि पूरी योजनाओं को स्वयं लागू भी करें, उसके लाभ में भागीदार होंगे तथा उसके मूल्यांकन की प्रक्रिया में भी भागीदारी निभावें। स्थानीय जनता अपनी मर्जी के मालिक स्वयं हो और खुदमुख्तार (स्वायत्त) बनकर विकास की प्रक्रिया का संचालन करें।[6]

निष्कर्ष :

इस प्रकार इस शोध–पत्र में ग्रामीण विकास की अवधारणा को समाजशास्त्रीय कसौटी पर परखने का भरसक प्रयास किया गया है। किसी भी समाज के बदलाव को समझने के लिए समाजशास्त्रियों ने कुछ मानक तय कर रखे हैं जैसे–जनसंख्या की स्थिति, गरीबी का स्तर, आर्थिक विकास, कृषिगत विकास, भूमि सुधार, शिक्षा उपलब्धता, स्वास्थ्य सेवाओं की आपूर्ति, संपर्क के साधन एवं आवासीय व्यवस्था। इन तमाम कसौटियों पर ही हम किसी समाज में बदलाव ला सकते हैं। इस शोध की मूल अवधारणा भी यही है। भारत के गाँवों में सरकार समय–समय पर अनेक विकास योजनाएँ चलाती रहती है। इन योजनाओं को पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से कार्यान्वित कराया जाता है।

संदर्भ–सूची :

1. कुरूक्षेत्र, 'ग्रामीण भारत में सामाजिक बदलाव', प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 2015
2. आलम, महबूब : ''ग्रामीण विकास एवं गरीबी निवारण कार्यक्रम'',, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2014
3. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी. डी. : ''ग्रामीण तथा नगरीय समाजशास्त्र'', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
4. देसाई, ए. आर. : ''भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, 2004
5. त्रिपाठी, रेणु : ''ग्रामीण विकास और निर्धनता उन्मूलन'', ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2011
6. पॉवर, मीनाक्षी : ''पंचायती राज और ग्रामीण विकास'', राधा पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2013